मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्व वाद) के प्रचार के क्रम में

= शिक्षा दर्शन =

शिक्षा दर्शन ही शिक्षा का आधार है । शिक्षा के अभीष्ट में शिष्टता समाहित है । शिष्टता पूर्ण दर्शन ही शिक्षा होता है । मूलत: शिक्षा परम्परा में जीवन के सभी आयामों, कोणों, दिशा एवं परिप्रेक्ष्य संबंधी नीति गति एवं गम्यता के अर्थ में शिक्षा के आदान प्रदान अपरिहार्य सिद्ध होता है । शिक्षा, शिक्षा मानस की समृद्धि पर ध्यान और उसके व्यावहारिक प्रक्रिया पर निर्भर करता है । अभी शिक्षा मानस की समृद्धि पर ध्यान देना आवश्यक है। हम साक्षरता तकनीकी और विज्ञान को चरितार्थ करने की दिशा में अपार प्रयास किये एवं करते आ रहे हैं । यह एक यान्त्रिकता की सीमा में प्रयोजन सिद्ध हुआ । मनुष्य पूर्णतया यान्त्रिकी नही है । मूल में मनुष्य ~~सचेतना एवं~~ सचेतन शीलता का होना पाया जाता है । मनुष्य में पाई जाने वाली सचेतना की तृप्ति के अर्थ में ही शिक्षा सार्थक होती है । सचेतना की चरितार्थता उसकी तृप्ति के अर्थ में है । सचेतना संज्ञान शीलता एवं संवेदन शीलता का संयुक्त रूप होने के कारण सार्वभौम गुण स्वभाव में ही मनुष्य का अतिसंतृप्त होना देखा जाता है । सचेतना की सार्वभौमता मूल्यों की पहचान उसके मूल्यांकन वादी चरित्र में सार्थक होता है । मूल्य, मूल्यांकन, प्रक्रिया एवं ज्ञान अथवा सचेतना का परम्परागत होना व्यावहारिक है । प्रत्येक विद्यार्थी में ज्ञान, समझ एवं सचेतना समान रूप से वर्तमान है उसकी ही अभिव्यक्ति प्रक्रिया प्रणाली एवं पद्धति को शिष्टता एवं सामाजिकता पूर्ण स्वरूप देना ही शिक्षा का ऐश्वर्यकारी कार्यक्रम है ।

भौतिक वादी चेतना को व्यावहारिक मान लेने पर वह यान्त्रिक हो जाता है अथवा यान्त्रिकता के अर्थ में अपने अर्थ को स्पष्ट कर पाता है तब अधिभौतिक वादी चरित्र आदर्श प्राय हो जाता है । यदि अधिभौतिक वादी चरित्र को व्यावहारिक मान लिया जाये जिससे मानव सहज जीव कारुण्य प्रकाशित होता है वह यान्त्रिकता अर्थात भौतिक वादिता को गणय मानने लगता है साथ ही भौतिक वादी चरित्र को अपनाय हुआ मनुष्य समुदाय से प्रताड़ित होता हुआ देखा गया है । उसकी दार्शनिक सत्यता भी अनमिलन की स्थिति में ही स्पष्ट होती है । अधिभौतिक वादी चेतना से पदार्थ को एवं भौतिक वादी पदार्थ अपने को रहस्य में भौतिक वादी अपने को अनिश्चितता एवं अस्थिरता में अंत करने के लिये बाध्य हुये । इस प्रकार दोनों ही वाद प्रत्येक मनुष्य से संबद्ध दिशा कोण, परिप्रेक्ष्य एवं आयाम संबंधी स्पष्ट गति एवं गम्यता को शिक्षित प्रशिक्षित एवं प्रबोधित करने में असमर्थ रहा यही निग्रह बिन्दु है इस बिन्दु

/ से चेतना को निस्पन्न करने के पक्ष में समस्त तर्क देते गए फलत: अधिभौतिक वादी

से उभरने के लिये शिक्षा विद् एवं विद्वानों के पास दो ही विकल्प हैं (1) दोनो विचार धाराओं को मिलाकर घटाकर, जोड़कर एवं काटकर यदि सार्वभौम समाधान उक्त सभी बिन्दुओं के अर्थ में निकलता है तो उसे व्यवहार रूप देने के लिये प्रयास करना चाहिये अन्यथा (2) विकल्पात्मक विश्व दृष्टिकोण को अनुसंधान पूर्वक विकसित करना चाहिये इसी क्रम में विकल्पात्मक विश्व दृष्टिकोण समीचीन होने की स्थिति में उसे पूर्णत: हृदयगम करने का प्रयास करना चाहिये तदोपरान्त सार्वभौमता सिद्ध होने की स्थिति में उसे व्यवहार शिक्षा एवं व्यवस्था का स्वरूप देने के लिये कटिबद्ध होना चाहिये । इसी क्रम में मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्व वाद) हमें उपलब्ध है ।

मध्यस्थ दर्शन सत्ता अर्थात चेतना में सम्पृक्त प्रकृति को अस्तित्व सर्वस्व प्रतिपादित किया है इसमें दोनो तर्क अर्थात चेतना से पदार्थ, पदार्थ से चेतना को निष्पन्न कराने का सम्पूर्ण तर्क व्यर्थ सिद्ध हो जाता है । यह स्वयं स्पष्ट है कि अस्तित्व न कभी घटता है और न कभी बढ़ता है । अस्तित्व में मात्रा के स्तर में जो भी परिवर्तन हो रहा है उसे हम कैसे भी नाम दें किन्तु मूलत: कोई वस्तु न उत्पन्न होती है और न कोई नाश होता है । अस्तित्व के अतिरिक्त और कोई वस्तु या स्थिति की कल्पना करने की व्यवस्था मनुष्य के पास नही है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि अस्तित्व को समझने के स्थान पर हम हजारों वर्षों से भटकते आ रहे हैं । इस प्रकार (1) सत्ता से सम्पृक्त प्रकृति अस्तित्व सर्वस्व होने के कारण अस्तित्व स्वयं सह अस्तित्व होने की सत्यता को मध्यस्थ दर्शन प्रतिपादित करता है ।

सत्ता से सम्पृक्त प्रकृति नित्य सामरस्य होने की सत्यता को सत्ता में नियंत्रित प्रकृति नित्य क्रियाशील एवं विकास शील होने के साक्ष्य को स्पष्ट किया इससे चेतना में सम्पृक्त प्रकृति का चेतना में सामरस्य रत होने की सत्यता स्पष्ट हो जाती है साथ ही विकास शील प्रकृति विकास क्रम घटना पूर्वक विभिन्न पदों में होने विभिन्न अर्थों अर्थात मूल्यों को अभिव्यक्त एवं प्रकाशित करने की व्यवस्था को मध्यस्थ दर्शन स्पष्ट करते हुये इस पृथ्वी पर चार अवस्था की सृष्टि को निरूपित किया है जिसे क्रमश: (1) पदार्थावस्था (2) प्राणावस्था (3) जीवावस्था (4) ज्ञानावस्था का नाम प्रदान किया है साथ ही क्रम से विकसित होने की सत्यता को स्पष्ट किया एवं मनुष्य को सर्वोच्च विकसित इकाई होने की (1) गरिमा एवं महिमा को प्रबोधित करते हुये जीवों से मौलिक रूप से भिन्न होने की सत्यता को उद्घाटित किया ।

---3---

मध्यस्थ दर्शन जीवन प्रतिष्ठा को और चेतना को स्पष्ट करते हुये जड़ प्रकृति विकसित होकर चैतन्य पद में प्रतिष्ठित होने की व्यवस्था को अर्थात नियति क्रम व्यवस्था में अध्ययन सुलभ कर दिया इससे जीवन और शरीर की मौलिक भिन्नता प्रतिपादित होती है जीवन गठन पूर्णता प्राप्त एक परमाणु होने की सत्यता को उद्घाटित किया है फलत: जीवन का अमरत्व और शरीर का नश्वरत्व इंगित होता है । यही जीवन चेतना के स्वरूप में शरीर के द्वारा निरन्तर प्रकाशमान है । जीवन में ही संज्ञानीयता एवं संवेदन शीलता की अपेक्षाकृत अत्यधिक प्रचुरता से होना पाया जाता है संज्ञानीयता एवं संवेदनशीलता प्रत्येक जीवन में अर्थात प्रत्येक मनुष्य में समान रूप से रहता है । इसे समाज चेतना का स्वरूप देना ही समाज चेतना के रूप में वर्तने योग्य संस्कार प्रबोधन प्रयोग एवं व्यवहार रूप देना ही शिक्षा का अनिवार्य कार्य है । चेतना में संस्कार और प्रबोधन पूर्वक ही गुणात्मक विकास होता है उसी सत्यतावश शिक्षा संस्कार पूर्वक मनुष्य को सामाजिक होने की व्यवस्था समीचीन रहती है ।

शिक्षा में प्रधानत: मूल्यों को इंगित करना अति आवश्यक है ।मूल्य ही मूल्यांकन का आधार है, मनुष्य जीवन मूल्य एवं मानव मूल्य को पहचानने पर ही वह सामाजिक होने की व्यवस्था है केवल वस्तु मूल्य से मनुष य को सामाजिक बनाना संभव नही है क्योंकि वस्तुएं समाज गति के लिये उपयोगी होती है । वस्तु ही सम्पूर्ण मूल्य अर्थात समाज मूल्य, मानव मूल्य और जीवन मूल्य नही होता । इसके विपरीत जीवन शक्तियां परावर्तित होकर श्रम के रूप में प्राकृतिक ऐश्वर्य पर नियोजित होती है फलत: उसमें उपयोगिता मूल्य एवं कला मूल्य का सिद्ध होना देखा जाता है । शरीर के द्वारा जीवन अपने कार्यविन्यास को व्यवसाय और व्यवहार के रूप में अभिव्यक्त करता हुआ देखा जाता है जिसमें से व्यवहार में सामाजिक होना एवं व्यवसाय में अधिकाधिक उत्पादन सिद्ध करना ही सम्पूर्ण अभीष्ट है । इस प्रकार मनुष्य व्यवहार में सामाजिक होने एवं व्यवसाय में स्वावलम्बी होने के अर्थ को सार्थक बनाना ही शिक्षा संस्कार की सार्थकता है । व्यवहार में मनुष्य को संज्ञान शीलता एवं संवेदन शीलता को संयुक्त प्रयुक्ति की आवश्यकता है । व्यवहार में ही मूल्यांकन की निरन्तर आवश्यकता बनी रहती है इस प्रक्रिया को सुलभ बनाने के लिये एवं मानव चेतना को पहचानने के लिये मध्यस्थ दर्शन पूर्णत: अध्ययन सुलभ कराता है । गठन पूर्णत: प्राप्त एक परमाणु से मन,वृति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा जैसी अक्षय बल एवं आशा,विचार,इच्छा व संकल्प व अनुभव जैसी अक्षय शक्तियाँ अनवरत प्रत्येक मनुष्य मे प्रकाशमान होने की

की सत्यता को स्पष्ट करते हुये इन अक्षय बल एवं शक्तियों का संयुक्त स्वरूप ही संचेतना होने, संचेतना स्वयं संज्ञान शीलता एवं संवेदन शीलता का सम्मिलित रूप होने के साक्ष्य में प्रत्येक व्यक्ति को प्रस्तुत किया है । मानव संचेतना मानव के स्वत्व होने के सत्य को प्रतिपादित करते हुये मानव संचेतना ही मानवीयता एवं मानवीयता को मानव व्यवहार का आधार होने की सत्यता का अध्ययन सुलभ किया है ।

मध्यस्थ दर्शन में मनुष्य के संबंध में जो भी कहा गया है वह प्रत्येक मनुष्य में देखने को मिलता है इस प्रकार मध्यस्थ दर्शन मानव को केन्द्र में रख कर सम्पूर्ण अध्ययन करता है जीवन अथवा जीवन संचेतना ही अस्तित्व से अनुभूति तक का दृष्टिा होने के सत्य को स्पष्ट किया है जिससे मनुष्य का दायित्व एवं कर्तव्य स्पष्ट हो जाता है । जीवन की गरिमा, महिमा को शरीर और शरीर जन्य अथवा शरीर कृत कार्य विन्यास की उपयोगिता आवश्यकता एवं प्रयोजनीयता को पहचानने की दिशा में यह एक देन सिद्ध हुआ है । इन सम्पूर्ण आवश्यकता एवं उपयोगिता व प्रयोजनीयता को समाज संचेतना के स्वत्व में पाने के लिये शिक्षा संस्कार की व्यवस्था हमें करतलगत हो जाती है । शिक्षा को मूल्यों के अर्थ में एवं संस्कारों को मानव के परस्पर पहचान के अर्थ में प्रावधानिक करने की व्यवस्था एवं इसकी निरंतरता से ही सम्पूर्ण सीमाओं से ग्रसित मानव ~~समृद्धि~~ के मुक्त होने की व्यवस्था है ।

मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्व वाद) निम्न विचारों का भी विकल्प सिद्ध हुआ है :-

1) रहस्यात्मक अध्यात्मवाद के स्थान पर अनुभवात्मक अध्यात्म वाद सुलभ हो गया है जिसमें मानव प्रमाण व प्रमाणिकता एवं उसकी निरन्तरता में अश्वस्थ एवं विश्वस्थ होने की व्यवस्था को प्रतिपादित किया है । प्रमाण को प्रयोग व्यवहार तथा अनुभव सिद्ध होना निरूपित किया है । साथ ही अनुभव पूर्वक व्यवहार व प्रयोग सार्थक होने की सत्यता को स्पष्ट करते हुये अनुभव केवल सत्य में से के लिये होना निरूपित किया । सत्य ही अध्यात्म होने के कारण अनुभवात्मक अध्यात्म वाद सिद्ध हो जाता है । सत्य में संचेतना अनुभूति होने की तृषा एवं व्यवस्था को संतुष्टि एवं समाधान के अर्थ में विकास एवं गुणात्मक विकास के क्रम में अध्ययन सुलभ किया है जैसे गठन क्रिया एवं आचरण पूर्णता का प्रतिपादन विश्लेषण पूर्वक ही सुलभ हुआ है । परमाणु के गठन पूर्णता पर्यन्त मात्रात्मक विकास के साथ गुणात्मक विकास होने उसके अनन्तर गुणात्मक

विकास अपरिष्कृत संचेतना से परिष्कृत एवं परिष्कृत पूर्ण संचेतना के स्वरूप में प्रकाशित होने को स्पष्ट करते हुये परिष्कृत संचेतना पूर्वक मानव सामाजिक होने की सार्वभौम व्यवस्था स्पष्ट किया है ।

संघर्षात्मक जनवाद के स्थान पर व्यवहारात्मक जनवाद का प्रबोधन मध्यस्थ दर्शन के विश्वदृष्टिकोण के अनुसार हृदयगंम करने की व्यवस्था है इसका आधार लोकांक्षा (न्यायापेक्षा एवं सही करने की इच्छा) व लोकलक्ष्य (समाधान समृद्धि अभय एवं सह अस्तित्व) की सार्वभौमता है । इसे सार्थक बनाने के लिये समृद्ध शिक्षा संस्कार एवं व्यवस्था की क्षमता व दायित्व को प्रतिपादित किया है । प्रत्येक मनुष्य में न्यायापेक्षा एवं कार्यव्यवहार को सही ढंग करने की इच्छा एवं सार्वभौम लक्ष्य विद्यमान रहता है । साथ ही मनुष्य रुचि के स्थान पर वैविध्य होने की व्यवस्था को स्पष्ट किया है । रुचियों (इंद्रिय लिप्सा) का नियंत्रण सार्वभौम लक्ष्य व आकांक्षा सुलभ होने वाले शिक्षा संस्कार व्यवस्था को स्पष्ट कर दिया है । इस प्रकार मानव संचेतना की सार्वभौमता असंदिग्ध रूप में अध्ययन सुलभ हो जाती है जिससे वर्ग समुदाय, रंग, नस्ल, जाति, पंथ एवं मतादि से मुक्त मानव संचेतना वादी एवं मानव कारी स्वतंत्रता व अधिकार पूर्ण व्यवहार परम्परा को स्थापित करने साथ ही उसकी निरन्तरता सतत वर्तमान रहने की संभावना समीचीन हुई है । सफल सार्थक एवं व्यवस्थित रूप देना हमारा लक्ष्य एवं कर्तव्य है ।

द्वंद्वात्मक भौतिक वाद के स्थान पर समाधानात्मक भौतिक वाद को मध्यस्थ दर्शन स्पष्ट किया है जिसके साक्ष्य में अस्तित्व, अस्तित्व में विकास एवं विकास क्रम घटना एवं स्वयं समाधान एवं उसकी निरन्तरता होने की सत्यता को अध्ययन सुलभ करते हुये मानव संचेतना अक्षय बल व अक्षय शक्ति सम्पन्न होने की सत्यता को स्पष्ट किया है जिससे प्रत्येक मनुष्य अधिक उत्पादन एवं कम उपभोग करने योग्य इकाई है को ज्ञात कराता है । साथ ही मनुष्य परिष्कृत संचेतना पूर्वक अर्थ की सुरक्षा एवं सदुपयोग करने फलत: आवश्यकताएं संयत होने की सत्यता को उद्घाटित किया है जिससे आवश्यकता से अधिक उपलब्धि की संभावना नित्य समीचीन होने की सत्यता स्पष्ट होती है इस प्रकार परिष्कृत एवं परिष्कृत पूर्ण संचेतना पूर्वक अनुभवात्मक अध्यात्म वाद मूल्य वाहकता व मूल्यांकन रूप में व्यवहारात्मक जनवाद अधिक उत्पादन कम उपभोग सहित अवर्तन शील अर्थ व्यवस्था के रूप में समाधानात्मक भौतिक वाद मानव के सभी कोण आयाम परिप्रेक्ष्य एवं दिशा में चरितार्थ होने की व्यवस्था है ।

उक्त तथ्यों को हृदयंगम करने के उपरान्त निम्न तीन समस्याओं का समाधान व्यवहार सुलभ हो जाता है जैसे :-

(1) भोगोन्मादी रुचि के स्थान पर व्यवहार वादी रुचि रुझान को ।

(2) कामोन्मादी मनोविज्ञान के स्थान पर मानव संचेतना (परिष्कृत संचेतना) वादी व कारी संस्कार प्रक्रिया व प्रवृत्ति को ।

(3) लाभोन्मादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर लाभ हानि मुक्त आवर्तनशील श्रम नियोजन व श्रम विनिमय वादी अर्थव्यवस्था को समग्र प्रकार से अध्ययन सके व्यवहार

सुलभ करना व्यवहार शिक्षा का स्वरूप है इसे ही पूर्णतया हृदयगम कराता है ।

जन्म से ही प्रत्येक मनुष्य संचेतनाशील है यही जीवन है । संचेतना की तृप्ति के लिये सम्पूर्ण कार्य व्यवहार विचार और अनुभव करते हुये मनुष्य को देखा जा रहा है तृप्ति या अतिसंतृप्ति का ही नामकरण व स्थिति सुखशांति संतोष एवं आनंद है आनंद का स्वरूप सार्वभौम अर्थात प्रमाणिकता पूर्ण होते तक संचेतना में तृप्ति होता हुआ देखा नही जाता प्रथम कोई व्यक्ति किसी कार्यमें जो अनुचित है उससे वह आनन्द प्राप्त करने का दावा कर सकता हैकिन्तु उसके दूसरे ही क्षण उसके अस्थाई होने की गवाही इस प्रकार मिल जाता है कि वह स्वयं दूसरे क्रियाकलापों के द्वारा आनन्द की तलाश में होता जाता है द्वितीय बच्चों को आग अच्छा लगते हुये छूने पर अहित हो जाता है उसके पश्चात् कई बच्चे छूना नही चाहेगें और कोई भी बच्चा असत्य ~~सत्येय~~ अस्तेय एवं परिग्रह से आनन्द का अनुभव नही करता वह प्रौढ़ होने के पश्चात उसके विपरीत पक्ष का भी हो जाता है और प्रौढ़ या युवावस्था में इंद्रिय सन्निकर्षात्मक आनन्द को आनन्द समझने पर भी उसकी निरन्तरता न होने की गवाही से उससे विमुख होना पड़ता है या अन्य प्रकार से आनन्द की तलाश करता है ।

प्रियाप्रिय हिताहित एवं लाभालाभ दृष्टियों से सामयिकरूप से सुख या दुख की झलक मिलती है मनुष्य को प्रौढ़ होने के पश्चात् समझना पड़ता है कि इस सीमा तक में उसकी निरंतरता नही है । इन सभी साक्षियों से स्पष्ट हो जाता है कि अबोधअबोध अवस्थाओं में अपरिपूर्णता वादी कोई व्यवहार से पूर्णता की अपेक्षा सिद्ध नही होती साथ ही यही पराभव अथवा वास्तविकता है जो आनन्द की निरन्तरता के लिये हमें उत्प्रेरित करता है इसी सत्यतावश आनन्द को भोगता कौन है? को पहचानने की आवश्यकता हुई । संचेतना जीवन का स्वरूप होने के कारण संचेतना के अक्षयता की निरन्तरता शिशु,बाल्य कौमार्य एवं वृद्धाप्य में भी सम्पूर्ण मनुष्य में देखने को मिलता है । इस प्रकार संचेतना की तृप्ति ही जीवन की तृप्ति है । जीवन तृप्ति का स्वरूप समाधान और प्रामाणिकता ही है । प्रामाणिकता और समाधान सार्वभौम और शाश्वत है अस्तु जीवन तृप्ति का शाश्वत स्त्रोत स्पष्टतया मध्यस्थ दर्शन के रूप में प्राप्त है इसे पाना ही व्यवहार शिक्षा की भूमिका है । इस प्रकार व्यवहार शिक्षा संचेतना की तृप्ति को ध्यान में रखते हुये मानव के साम्य लक्ष्य और आकांक्षावादी लक्ष्य को निरूपित करना है ।

सार्वभौम आकांक्षा और मानव में समृद्धि समाधान अभय सह अस्तित्व यही सार्वभौम लक्ष्य भी है । समृद्धि अधिक उत्पादन से समाधान क्यों और कैसे की जिज्ञासाओं के उतर से अभय न्याय व विनिमय सुलभता से और सह अस्तित्व मूल्य और मूल्यांकन से समीकृत व्यवहार सर्व सुलभ होने की उत्प्रेरणा को मध्यस्थ दर्शन अध्ययन सुलभ कराता है ।

दिव्य पथ संस्थान
अमरकंटक